Indian J. Soc. & Pol. 06 (02):125-128: 2019 **ISSN: 2348-0084(P)**
ISSN: 2455-2127(O)

प्रगतिशील जीवन मूल्य और परिवर्तनकारी विचार

अनिल कुमार यादव[1]
[1]शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हण्डिया पी0जी0 कॉलेज, हण्डिया, प्रयागराज, उ0प्र0,भारत

ABSTRACT

प्रगतिशील आन्दोलन के विकास में प्रगतिशील लेखक संघ की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। किन्तु जैसे–जैसे यह आन्दोलन आगे बढ़ा साहित्यकारों में वैचारिक संघर्ष भी बढ़ता गया। एक ओर प्रगतिशील आन्दोलन के सहयोगी थे जो बाद में विरोधी बन गये तो दूसरी ओर नयी विचारधारा के बुद्धिजीवी, लेखक आदि थे जिनका इस आन्दोलन को पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। फॉसीवाद (फासिज्म) की परम्परा से कम्युनिस्टों और प्रगतिशील लेखकों की विचारधारा में एकाएक परिवर्तन हुआ। एक ओर पंत जैसे लोग थे जो प्रगतिशील आन्दोलन से दूर खिसकते जा रहे थे तो दूसरी ओर निराला जैसे लोग थे जो प्रगतिशील धारा के निकटस्थ होते जा रहे थे, और इस तरह प्रगतिशील लेखकों में बड़े पैमाने पर वैचारिक परिवर्तन दिखायी देने लगता है। वैचारिक दृष्टिकोण से सितम्बर 1947 में इलाहाबाद में आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक संघ का विशाल आयोजित असाधारण महत्त्व का रहा। साहित्यकारों के अन्तर्विरोध खुलकर सामने आये। प्रगतिशील लेखक संघ के अन्तर्विरोध की अभिव्यक्ति बम्बई अधिवेशन (1947) में भी मिलती है। आगे चलकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी प्रगतिशील विचारधारा को समर्थन प्राप्त हुआ।

KEYWORDS: *हिन्दी साहित्य, प्रगतिशील लेखक संघ, समाजवाद*

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना (10 अप्रैल, 1936 लखनऊ) के साथ ही जैसे–जैसे यह आन्दोलन और मुखरित हुआ साहित्यकारों का दो वर्ग–एक पक्ष और दूसरे विरोध के रूप में आमने–सामने दिखाई देने लगा। इसे साहित्यकारों के विचारात्मक संघर्ष के रूप में भी देखा जा सकता है। उदाहरण के रूप में जहाँ एक ओर दिनकर ने 1936 से 1944 तक प्रगतिशील आन्दोलन के विकास में अपनी सक्रिय भूमिका निभाई, वहीं दूसरी ओर ज्यों ही सोवियत संघ की लालसेना ने फासीवाद को पराजित किया त्यों ही उनकी भूमिका बदल जाती है, और अब वे खुले तौर पर मार्क्सवाद–विरोध के प्रवक्ता बन जाते हैं। लेकिन प्रारम्भ में जहाँ प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन को जबरदस्त विरोध का सामना करना पड़ा, वहीं दूसरी ओर अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञों, बुद्धिजीवियों, लेखकों और विशेषकर नए लेखकों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

''फासीवाद पर मित्र राष्ट्रों की विजय और सोवियत समाजवादी राजसत्ता की राजनीतिक प्रतिष्ठा के उभार के दौर में प्रगतिशील आन्दोलन का एक नया जुझारू दौर शुरू होता है जो 1946 से 1951–52 तक चलाया है।''(अवस्थी,पृ061) ''सन् 1946 का साल भारतीय जनता के नए इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण था। सारे संसार में नाजियों की हार के बाद साम्राज्य विरोधी लहर उठान पर थी। भारत में बड़े पैमाने पर हर वर्ग के लोग संघर्षों में भाग लेने लगे। केवल पूँजीपति इन संघर्षों से अलग थे। उन्हें भय था कि अंग्रेजो के विरूद्ध क्रान्ति हुई तो उनका भविष्य भी खतरें में पड़ जाएगा। कांग्रेस और लींग के नेता, जो किसी और बात पर तो सहमत न थे, किन्तु बात पर जोर दे रहे थे कि अंग्रेजों से सत्ता शांतिपूर्ण वैधानिक उपायों से प्राप्त की जाए। कांग्रेसी नेता सन् 1942 की क्रान्ति का गौरव का गौरव गीत गाकर जनमत अपने पक्ष में करते थे, कम्युनिस्टों को गद्दार कहकर वामपक्ष विरोधी अभियान चला रहे थे, लेकिन सन् 1946 में अंग्रेजी राज के खिलाफ जो संघर्ष उग्र रूप धारण कर रहे थे उनसे कतरा रहे थे। कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने कुछ समय के लिए अपनी गलत नीति छोड़कर एक सुसंगत साम्राज्य विरोधी नीति अपनाई थी।''(शर्मा, पृ0422)

इस परिवर्तनकारी दौर में प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन तथा उससे जुड़े अनेक संगठनों, सभी भारतीय भाषाओं के प्रगतिशील साहित्यिकों, भारतीय जननाट्य संघ आदि के बढ़ते हुए देशव्यापी प्रभावों के साथ दाखिल हुआ। ''विश्व साम्राज्यवाद के सबसे क्रूर रूप कासिज्म को उसकी ही सर–जमीन पर पराजित किया गया था और इस दृष्टि से स्टालिन, लालसेना, कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी–लेनिनवादी विचारधारा की प्रतिष्ठा में वृद्धि स्वाभाविक थी। नौजवानों और बुद्धिजीवियों का इस नए दौर में कम्युनिस्ट विचारधारा और प्रगतिशील लेखक संघ के प्रति दृष्टिकोण में एकाएक परिवर्तन हुआ। विश्व परिस्थिति में आए इस गुणात्मक बदलाव से वैचारिक चेतना का गहरा सम्बन्ध था।''(अवस्थी, पृ061)

चेतनागत परिवर्तन के परिणाम स्वरूप इस काल में प्रगतिशील लेखक संघ के अन्दर समाहित फ्रायडवादी, अराजकतावादी और व्यक्तिवादी अचानक छँटने लगे। हंसराज रहबर इस घटनाक्रम पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं– ''युद्ध और युद्ध के बाद की घटनाओं में यह रोमांसवाद टिक नहीं सकता था। विश्व राजनीति का झुकाव समाजवाद और लोकवाद की ओर हुआ था।''(अवस्थी, पृ0422)

अतएव ''तमाम तरह के प्रतिभागी रुझान वाले साहित्यकार अपने को सांगठनिक अनुशासन के दायरे से मुक्त रखने वाली व्यक्तिवादी लेखक प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन से दरकिनार हो गए। उनमें से कुछ लोगों ने अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, धर्मवीर भारती

1: Corresponding Author

आदि के नेतृत्व में 1944–45 में 'परिमल' की स्थापना की। इन्हीं लोगों ने प्रयोगवाद, शुद्ध साहित्य कला में नवीन प्रयोग और अन्वेषण आदि की बात करते हुए साहित्य के राजनीतिकरण के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा करने की चेष्टा की।''(वर्मा,1957)

''1936 से 1946 तक प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन का एक दशक पूरा हो गया था। इस अवधि में निराला प्रगतिशील लेखक संघ से कुछ विरक्त से रहे पर 1946 में वे कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवाद और क्रान्ति के प्रति आस्था रखते हुए दिखाई देते हैं। रामविलास शर्मा ने बताया है कि निराला उन दिनों कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत नजदीक थे। उनका विचार था कि अंग्रेजों से समझौता न करके भारतीय जनता को क्रान्ति की राह पर आगे बढ़ना चाहिए।''(शर्मा, पृ0422) ''अब तक निराला 'न आए वीर जवाहर लाल' शीर्षक कजली लिख चुके थे और अमृतलाल नागर, नरेन्द्र शर्मा और रामविलास शर्मा के सम्पर्क की वजह से मार्क्सवाद–लेनिनवाद से गहरा परिचय प्राप्त कर चुके थे।''(अवस्थी पृ062)

इस समय तक प्रगतिशील लेखक संघ का केन्द्रीय कार्यालय बम्बई आ गया था। जिसके अनेक कारण थे, ''एक तो कम्युनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय कार्यालय का बम्बई होना, दूसरे 'जनयुग', 'नया अदब' और 'नया साहित्य' का वहीं से प्रकाशित होना, तीसरे फिल्म उद्योग का मुख्य केन्द्र होना और चौथे सरदार जाफरी, कैफी आजमी, बलराज साहनी, शमशेर बहादुर सिंह, अमृतलाल नागर, नरेन्द्र शर्मा, शंकर शैलेन्द्र, शील आदि का बम्बई में काम करना।''(अवस्थी, पृ0183) इस प्रकार 'हंस' और 'विप्लव' के अतिरिक्त अब प्रगतिशील साहित्य के कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से प्रकाशित 'जनयुग' (साप्ताहिक) 'नया साहित्य' (मासिक), 'नया अद्धव' (उर्दू मासिक) आदि पत्रों का भी भरपूर सहयोग मिलने लगा।

प्रगतिशील आन्दोलन के विकास में नरेन्द्र देव के सम्पादन में प्रकाशित 'जनवाणी' पत्रिका का सहयोग सराहनीय रहा। जिसके पहले ही अंक में प्रगतिवाद के सम्बन्ध में लिखा गया, ''यह संक्रान्ति काल है। पुराने विश्वास, पुरानी नैतिकता और पुरानी परम्परा के प्रति एक शंका आज समग्र वातावरण में व्याप्त है। पर नया अभी पूर्णरूपेण नहीं बन पाया है। बनने के क्रम में है। जो बनने के क्रम में होता है, वह समाज के पूर्ण विश्वास का भाजन नहीं होता। जो पूर्ण विश्वास का भाजन नहीं होगा, उसमें अपने मन को रमा लेने की शक्ति नहीं होती। इसका प्रमाण वर्तमान हिन्दी का वह प्रगतिशील साहित्य है, जिसमें सब कुछ नवीन रखने की चेष्टा की गई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस साहित्य में व्यक्त भाव युग सापेक्ष नहीं है। यह सब कुछ साहित्य में है, पर जनचित्त पर विश्वास प्राप्त तत्वों की कमी के कारण इस साहित्य के भाव में जनचित्त में रमण करने की शक्ति प्रायः नहीं है। सम्भवतः इस बात को आज के प्रगतिशील साहित्यकारों ने भी समझ लिया है। शायद यह भी एक कारण है कि प्रगतिवादी साहित्यकार अपने भावों को व्यक्त करने के लिए सांस्कृतिक आधार ढूँढने लगे हैं।''(विनोद,1946)

''अपनी परम्परा की स्वस्थ्य विरासत को ग्रहण करना तथा सांस्कृतिक आधार को ग्रहण करने की यह बात क्या 1936 अथवा 1938 के प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणापत्र में नहीं कही गई थी? बैजनाथ सिंह 'विनोद द्वारा उठाई गई पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्राप्त 'सांस्कृतिक आधार' की बात प्रगतिशील लेखकों के सामने 1936 में भी थी, और 1946 में भी।''(अवस्थी, पृ063) 'जनवाणी' द्वारा प्रगतिवाद को सहयोग एक हद तक ही मिला बावजूद इसके 1946 से 1951 तक के प्रगतिशील साहित्यिक आन्दोलन के विकास में 'जनवाणी' के मंच का महत्वपूर्ण स्थान रहा।

सन् 1946 हिन्दुस्तान के जनवादी आन्दोलन और उसकी क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु की दृष्टि से ऐतिहासिक वर्ष था। नाविक विद्रोह, कश्मीर छोड़ो आन्दोलन और 1946 के साम्प्रदायिक दंगों के बीच ''प्रगतिशील लेखक संघ के आह्वान पर हिन्दी के अधिकांश लेखकों ने साम्प्रदायिक एकता को मजबूत करने वाली रचनाएँ लिखीं। इनके अलावा जननाट्य संघ तथा पृथ्वी थिएटर्स ने पारस्परिक सद्भावना को सशक्त करने वाले अनेक नाट्य प्रदर्शन किए। इन्हीं दिनों प्रगतिशील लेखक संघ के मुखपत्र 'हंस' ने अपरिवर्तनवादी तथा रुढ़िवादी साहित्यकारों द्वारा निराला पर हो रहे प्रहारों के सन्दर्भ में निराला को पूर्ण समर्थन दिया। कहना चाहिए कि प्रगतिशील लेखक संघ के अन्दर निराला को क्रान्तिकारी रचनाकार के रूप में स्वीकृत किया जाना एक उल्लेखनीय घटना थी।''(वही पृ065) ''हंस ने अपनी जयंती के अवसर पर निराला के विरोधियों की खबर लेते हुए लिखा : 'हमारे कुछ साहित्यिक महारथी अगर निराला की हत्या नहीं कर पाए तो इसका कारण यह नहीं कि उस दिशा में प्रयत्न कम हुए। उसका कारण है निराला का सबल व्यकितत्व आज भी यदि हम पुरानी पत्र–पत्रिकाओं की फाइलें उलटें और हिन्दी साहित्य के पुराने इतिहासों पर नज़र डालें तो हमें उस अँधेरे का कुछ अंदाजा मिल सकेगा, जिसे चीरकर यह सूर्य अपनी समस्त दीप्ति में हमारे सामने जगमगा रहा है। हम उनको नमस्कार करते हैं।''(हंस,1947)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ''पंत प्रगतिशील आन्दोलन से दूर खिसकते जा रहे थे और निराला सभी प्रगतिशीलों के निकटस्थ प्रतीत होते जा रहे थे। ज्यों–ज्यों समझौता परस्त सुधारवादी नेतृत्व शांतिपूर्ण वैधानिक उपायों के जरिए देश के विभाजन की साम्राज्यवादी नीति से अपना सम्बन्ध जोड़ता हुआ राजसत्ता हथियाने की ओर तेजी से बढ़ रहा था, पंत उतनी ही तेजी से नेहरू, गाँधी और अरविन्द की बातें करने लगे थे। नेहरू के नेतृत्व में स्थापित बैवेल योजना के अधीन अन्तरिम भारत सरकर का जब 1946 में गठन हुआ तो पंडित नेहरू भी उसी नीति पर चल पड़े जिस नीति पर अब तक अंग्रेज और पटेल चल रहे थे अर्थात् जनक्रान्ति की शक्तियों और कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तरों पर छापे मारे गए और सैकड़ों कम्युनिस्ट नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया।'' ''दमन की यह जिम्मेदारी गृहमंत्री सरदार पटेल ने अपने ऊपर ले ली। दमन की लपेट में 'जनयुग' 'नया साहित्य' और 'जननाट्य संघ' भी आ गए।''(जनयुग,7 फरवरी,1947) ''दमन का उद्देश्य 'औपनिवेशिक स्वराज्य' की माउंट बेटन योजना को मनवाना था या उस पर चुप्पी साधने और निष्क्रिय रहने को विवश करना था। इन्हीं परिस्थितियों में साम्राज्यवादी विभाजन तय होना निश्चित हुआ और कम्युनिस्ट पार्टी ने सन् 1946 की नीति को तिलांजलि देकर कांग्रेस–मुस्लिम लीग और अंग्रेज सरकार के समझौते का समर्थन किया।''(विप्लव, जुलाई 1947)

''देश दो हिस्सों में बँट गया। जघन्य हत्याकाण्ड के बीच 15 अगस्त 1947 के दिन माउंट बेटन योजना की अनेक धाराओं के अधीन आजाद भारत की नई शासन व्यवस्था का श्री गणेश हुआ। प्रगतिशील लेखक संघ भयंकर विचारमंथन के दौर से गुजर रहा था। एक हिस्सा कहता था देश 'आजाद' हो गया, दूसरा कहता था, 'औपनिवेशिक स्वराज्य' हुआ है।''(राघव, पृ069)

''इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक संघ का सितम्बर 1947 के महीने में इलाहाबाद में विशाल अधिवेशन हुआ। यहाँ पर एक सूचना आवश्यक है कि सितम्बर 1947 में इलाहाबाद में हुए विशाल प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन से पूर्व 3 और 4 मई 1947 को लखनऊ में युक्त प्रान्तीय प्रगतिशील लेखक संघ की हिन्दी शाखा की प्रान्तीय समिति की एक बैठक हुई थी।''[18] जिसमें हिन्दी प्रगतिशील लेखक संघ के कार्यों का लेखा–जोखा रखा गया था और भावी कार्यनीति एवं कार्यक्रम तय किए गए थे। ''इसी बैठक में सितम्बर 1947 में अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक सम्मेलन करने और इस सम्मेलन के लिए धनराशि इकट्ठा करने का निश्चय किया गया तथा अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक कांफ्रेंस के लिए 15 विषय चुने गए और 15 अगस्त तक उनको प्रकाशित करने की बात तय की गई।''(अवस्थी, पृ066) ''अखिल भारतीय प्रगतिशील हिन्दी लेखक सम्मेलन के प्रधान मण्डल में तीन लेखकों को चुना गया– राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुमित्रानन्दन पंत। शिवदान सिंह चौहान, प्रकाशन चन्द्र गुप्त, पहाड़ी और नेमिचन्द्र जैन के सहयोग से अखिल भारतीय प्रगतिशील हिन्दी लेखक सम्मेलन का विधान तैयार करने का निर्णय हुआ था। इस बैठक में शिवदान सिंह चौहान, डॉ0 रामविलास शर्मा, पहाड़ी, प्रकाशचन्द्र गुप्त, साहब सिंह मेहरा, अमृतराय, कृष्ण कुमार, यशपाल और नेमिचन्द्र जैन उपस्थित थे।''(विप्लव,जुलाई 1947)

अनेक दृष्टियों से यह सम्मेलन असाधारण महत्व का था। ''अमरनाथ झा ने उद्घाटन किया। भदन्त आनन्द कौसल्यायन स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रधान सभापति थे। पंत, बच्चन आदि हिन्दी के प्रमुख कवियों ने कवि सम्मेलन में भाग लिया। उर्दू के अनेक शायर भी शरीक हुए। परन्तु सम्मेलन का सुखद वैशिष्ट्य था जनकवि सम्मेलन। पहली बार इतने व्यापक पैमाने पर जनकवि सम्मेलन हुआ था। स्वाभाविक था कि जहाँ कुलीन साहित्यकार छुआछूत के विचार से जनकवियों से दूर रहें, वहाँ अपना कर्त्तव्य समझते हुए प्रगतिशील आन्दोलन ने जन बोलियों के महान कलाकारों कबीर, जायसी सूर तथा तुलसी के उन प्रतिनिधियों का अभिनन्दन किया।''(अवस्थी, पृ066.67) ''और जिन्होंने वह कवि सम्मेलन देखा, वे भूल नहीं सकेंगे, किस प्रकार हमारे दिग्गज कवियों और प्रगतिशील गायकों– सुमन और केदार के स्वरों के ऊपर भी इन जनकवियों की आवाज उठकर छा गई थी। खेमसिंह नागर सभापति थे। बंशीधर शुक्ल ने अवधी में, मूढ़ जी और साहेब सिंह मेहरा ने ब्रजबोली में, गंगाशरण पांडे, रामकेर और धर्मराज ने भोजपुरी में, श्री नन्दन और बैजनाथ कुम्हार ने मुंगेरी मगही में, नवलपुरी ने वज्जिका में, विजय जी ने मैथिली में, अधिक लाल ने भागलपुरी (अंगिका–मगही) में और कानपुर के मजदूर कवि सुदर्शन ने कानपुरी आल्हा में अपनी रचनाएँ पढ़ी। सम्मेलन में उमंग आया। सम्मेलन के आयोजन ने ग्राम–साहित्य के कृत्तित्व में चार चाँद लगा दिए।''

''इस सम्मेलन में सज्जाद जहीर और सरदार जाफरी भी मौजूद थे। उर्दू तथा अन्य भाषाओं के लेखकों में जोश मलीहाबादी, सागर निजामी, कृश्न चन्दर, महेन्द्रनाथ, विश्वमित्र आदिल, मधुसूदन, ख्वाजा अहमद अब्बास, इस्मत चुगताई, मुमताज हुसैन, कैफी आजमी आदि के दस्तखतों से सम्मेलन के नाम एक संदेश पढ़कर सुनाया गया जिसमें देश के भौगोलिक बँटवारे की शोकपूर्ण स्वीकृति थी किन्तु सांस्कृतिक बँटवारे के खतरे से बचते हुए सम्मिलित संस्कृति की रक्षा की अपील की गई थी।''(वही)

इस सम्मेलन में पहला प्रस्ताव घोषणा पत्र के रूप में रखा गया जिसमें साम्प्रदायिक दंगों के प्रति दुःख और रोष तथा देश के नव–निर्माण व संस्कृति के उत्थान का आह्वान किया गया। ''दूसरे प्रस्ताव के द्वारा राजनीतिक दल से प्रगतिशील लेखक संघ की स्वतंत्रता घोषित की गई, तीसरे के द्वारा लेखकों के अधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संघर्ष का आह्वान किया गया, चौथे में राष्ट्रीय सरकार का स्वागत किया गया, पाँचवां बोलियों के विकास के बारे में था, छठा सेंसर खत्म करने के बारे में, सातवाँ दमन विरोधी प्रस्ताव था और आठवें प्रस्ताव में राजबंदियों की रिहाई की माँग की गई थी। इस तरह पच्चीस प्रस्ताव स्वीकृत किए गए थे।''

''उल्लेखनीय है कि पूरनचन्द जोशी इस दौर में हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव थे। उनकी राजनीतिक दृष्टि कांगेस के सुधारवादी नेतृत्व से संघर्ष और सहयोग की लचीली कार्यनीति के अनुसार ढली थी। अतः सन् 1947 के प्रगतिशील लेखक संघ के नेतृत्व और सम्मेलन पर भी इस नीति का असर होना स्वाभाविक था। इसलिए इस सम्मेलन में हम न केवल पंत, बच्चन और प्रभाकर माचवे की मौजूदगी देखते हैं, बल्कि प्रगतिवाद के घनघोर विरोधी अज्ञेय और इलाचन्द जोशी के उपस्थित होने पर हर्षध्वनि भी सुनाई पड़ती है।''(वही) यहाँ हंसराज रहबर की यह टिप्पणी विचारणीय जरूर है कि ''सन् 1947 के आते–आते प्रगतिशील लेखक संघ मध्यवर्ग के व्यक्तिवादी लेखकों का संगठन बन गया।''(वही पृ0159) इन आलोचनाओं के सन्दर्भ में अगर हम इस सम्मेलन द्वारा पास किये गये दूसरे प्रस्तावों के अभियानों की छानबीन करें तो पता चलता है कि ''विरोधियों के आरोपों से डरकर यह घोषित रूप में कहा गया था कि किसी भी राजनीतिक दल से प्रगतिशील लेखक संघ का कोई सम्बन्ध नहीं था। ऐसी घोषणा के बावजूद आज तक प्रगतिवाद के शत्रु, अपने आरोपों पर अडिग हैं। इससे ही पता चलता है कि इस प्रकार () का प्रस्ताव कितना अनावश्यक और कितना सिद्धान्तहीन समझौता था। इस सम्मेलन में राहुल सांकृत्यायन और भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने विरोधियों की आशंकाओं और आरोपों का काफी हद तक निराकरण करने की कोशिश की।''(हंस, अक्टूबर,1947)

''इस सम्मेलन के अन्दर विचारधारात्मक भटकाव और अन्तर्विरोध बड़े गहरे थे। विचार–विमर्श के दौरान मतभेद के बावजूद यह सम्मेलन अपने आयोजन में असाधारण और प्रगतिवाद की साहित्यिक धाक जमाने की दृष्टि से पर्याप्त सफल था।''(अवस्थी,पृ068)

प्रगतिशील लेखक संघ के भीतर मौजूद अन्तर्विरोध की अभिव्यक्ति राहुल सांकृत्यायन तथा कम्युनिस्ट पार्टी के सम्बन्ध को लेकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बम्बई अधिवेशन (दिसम्बर 1947) के समय हुई। ''वस्तुतः अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हिन्दू पुनरुत्थानवादी संस्कृति के समर्थकों और हिन्दू–मुस्लिम सम्मिलित संस्कृति के समर्थकों के बीच टकराव एक अरसे से चल रहा था।'' ''मेरी जीवन यात्रा'' नामक पुस्तक में राहुल सांकृत्यायन ने बताया है कि 1943–44 के लगभग ही साहित्य सम्मेलन के सभापति पद के चुनाव के लिए जमनालाल बजाज और उनमें टकराव हुआ था। इस संघर्ष में गाँधी जी के सहयोग के कारण कुछ मतों के फर्क से सेठ बजाज की जीत हुई थी। संघर्ष फिर उभरा जब देश आजादी प्राप्त कर चुका था। इस बार संघर्ष था सेठ गोविन्ददास और राहुल सांकृत्यायन के बीच। इस बार सेठ गोविन्ददास को 145 और राहुल जी को 180 वोट मिले।''

इस तरह इससे पता चलता है कि साहित्य सम्मेलन में भी प्रगतिशील विचारधारा को एक हद तक समर्थन मिलने लगा था।

REFERENCES

अवस्थी, रेखा *प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

जनयुग, 7 फरवरी 1947

वर्मा, लक्ष्मीकांत *परिमल (परिगोष्ठी संक्षिप्त विवरण* इलाहाबाद हिन्दी साहित प्रेस

सांकृत्यायन, राहुल *मेरी जीवन यात्रा (भाग–4)* नई दिल्ली,राजकमल प्रकाशन,

रांगेय राघव, *प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड*

भारत : वर्तमान और भावी / पृ0 280

हंस, अक्टूबर 1947

हंस, जनवरी–फरवरी संयुक्तांक 1947

विप्लव, जुलाई 1947

शर्मा, रामविलास *निराला की साहित्य साधना, खण्ड–1*

'विनोद बैजनाथ सिंह (1946) *जनवाणी,* दिसम्बर 1946'